ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री लेखन

डॉ. अनिता सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कॉलेज, गोविन्द नगर, कानपुर , उत्तर प्रदेश, भारत

सार

सम्पूर्ण विश्व का 75 प्रतिशत से अधिक उपलब्ध लौकिक साहित्य स्त्री को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इसका कारण यह है कि अब तक उपलब्ध विश्व का अधिकांश साहित्य पुरुषों के द्वारा लिखा गया है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि स्त्री में साहित्य या काव्य लेखन प्रतिभा नहीं होती बल्कि इसके पीछे सदियों से विद्यमान पितृसत्तात्मक व्यवस्था की वह जकड़न है जिसमें छटपटाती स्त्री को घरेलू कार्यों की चहारदीवारी में कैद कर पठन-पाठन व अध्ययन से वचिंत रखा गया तथापि विश्व का अधिकांश लोकसाहित्य, लोकगीत घरेलू काम करती और खेती किसानी व मजदूरी करती अनपढ़, गंवार औरतों की ही देन है। इससे हम स्त्रियों के अन्दर विद्यमान रचनात्मक प्रतिभा का कुछ-कुछ अनुमान लगा सकते हैं किन्तु यहां हम 'स्त्री-विमर्श' पर बात कर रहे हैं, जिसका अर्थ है स्त्री के विषय में गम्भीर चिंतन। यह एक अलग मुद्दा है। या इसे यूं कहा जाना चाहिये कि स्त्री-विमर्श यथार्थ में आधुनिकता ओर समकालीनता से जुड़ा हुआ प्रश्न है। इसे स्त्री-मुक्ति आंदोलनों से पृथक करके नहीं देखा जा सकता है। स्त्री-मुक्ति की अवधारणा भी विश्व में लोकतांत्रिक अवधारणाओं के उदय के फलस्वरूप ही प्रकाश में आई। फ्रांसीसी क्रांति के समय जब समता, स्वतन्त्रता और विश्वबन्धुतत्व का नारा दिया गया तभी स्त्री के लिए भी समान अधिकारों की मांग उठने लगी। और इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि यूरोपीय देशों में जान स्टुअर्ट मिल, जैसे डेमोक्रेट्स आम नागरिकों के साथ मिलकर स्त्री मताधिकार की मांग कर रहे थे।

परिचय

स्त्री आज साहित्य रूपी प्रोडक्ट के लिए कच्चा माल ही नहीं रह गई है। स्त्री-विमर्श व दलित विमर्श आज हिन्दी साहित्य के केन्द्रीय सरोकार व विमर्श हैं। साठोत्तरी कविताओं के पश्चात समकालीन कविता ने स्त्री की सर्वथा नई भूमिकाएं और साहित्य में स्त्री रचनाकारों का सार्थक हस्तक्षेप दोनाें ही उल्लेखनीय है। आज स्त्री विमर्श सिर्फ स्त्रियों द्वारा ही नहीं किया जा रहा है बल्कि इसके पीछे अनेक नारीवादियों, चिंतकों, साहित्यकारों, संपादकों, बुद्धिजीवियों के भी सशक्त व सार्थक प्रयास परिलक्षित किए जा रहे हैं। अब कविता में स्त्री 'केवल श्रद्धा' ही नहीं है वह पितृसत्ता के दुर्ग द्वार पर दस्तक देती, लहूलुहान होते हुये भी अपनी मंजिल की ओर बढ़ रही है। समकालीन हिन्दी कविता मानवीय सरोकारों से जुड़ी हुई कविता है जो स्त्रियों, आदिवासियों, पीड़ितों को पूरी मानवीय गरिमा और संवेदनशीलता के साथ चिन्हित करती है। यह जहां स्त्री की समाज में स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है, वहीं उसके लिए नया स्पेस (विस्तार) भी तलाशती है। समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री ने विहारी की नायिका है न छायावादियों की एकान्त प्रणयिनी है बल्कि अपनी पूरी साधारणता, कमजोरियों और विशिष्टताओं के साथ विद्यमान है। वह स्वाभिमानिनी मजदूरिन है या कृषक वाला या कोई आम स्त्री।[1]
समकालीन कविता उसे पूरी कलात्मकता के साथ व्यक्त करती है।
समकालीन कविता स्त्रियों की आदतें, उनके दैनिक कार्यो का पूरा ब्योरा सहेजती है-
"वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी। ज्वालामुखी बेलते हैं पहाड़, भूचाल बेलते हैं घर, सन्नाटे शब्द बेलते हैं, भाटे समंदर।"[2]
और रोटी बेलने, आटा गूंथने के दैनिक कार्य में वह आत्ममंथन भी करती है "..... और वह अपने ही वजूद की आंच के आगे। औचक हड़बड़ी में। खुद को ही सानती। खुद को ही गूँथती हुई बार-बार खुश है कि वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी।" -अनामिका
अनामिका की उपरोक्त कविता स्त्री के घरेलू कार्यों को महिमामण्डित करती है तो वहीं कात्यायनी ने घरेलू कार्य कर लेने वाली अशिक्षित औरत को पति के द्वारा तिरस्कृत होते दिखाया है, और नारीमुक्ति के समर्थक पुरुषों की भी स्त्री के प्रति हीन दृष्टि पर व्यंग्य प्रस्तुत किया है अपनी कविता 'नही हो सकता तेरा भला' में। देखें-
"हे ईश्वर, मुझे ऐसी औरत क्यों नहीं दी , जिसका कुछ तो भला किया जा सकता, यह औरत तो बस भात रांध सकती है, और बच्चे जन सकती है, इसे भला कैसे मुक्त किया जा सकता है।"
इसी प्रकार 'हॉकी खेलती हुई लड़कियां' कविता में, कवयित्री आशा करती है-
इसी तरह खेलती रहती लड़कियां, निस्संकोच निर्भीक, दौड़ती-भागती और हंसती रहती, इसी तरहहम देखते रहते उन्हें।,

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

पर शाम है कि होगी ही , रेफरी है कि बाज नहीं आयेगा, सीटी बजाने से।[3]
कवयित्री हॉकी खेलती लड़कियों की प्रसन्नता व मस्ती के विपरीत उनके जीवन के यथार्थ की झलक देकर कविता को एक पॅथेटिक मोड़ देने में समर्थ होती हैं। स्वप् में उन्हें हॉकी खेलते हुए दिखाकर भविष्य के प्रति आश्वस्त करती हैं। 'स्त्री' की कमजोर छवि, अबला की छवि विलाप करती हुई छवि, पुरुष संरक्षण की आकांक्षी छवि को आधुनिक स्त्री तोड़ रही है। वहीं इस भूमण्डलीयकरण की बाजारवादी संस्कृति उसकी देह को विज्ञापन की वस्तु बनाकर पुन: उसकी मानवीय गरिमा को छीनने के लिए आतुर हैं। समकालीन कविता इस देहविमर्श के विरूद्ध भी एक मुहिम चलाती है। स्त्री की इस पितसत्तात्मक समाज में पुरूष की अपेक्षा अधीनस्थ स्थिति का प्रतिवाद सविता सिंह अपनी कविता 'मैं किसकी औरत हँ' कविता में करती हैं और कहती हैं- "मैं किसी की औरत नही हूँ, मै अपनी औरत हूँ, अपना खाती हूँ, जब जी चाहता है तब खाती हूँ, मैं किसी की मार नहीं सहती, और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।"
पुरुष से पृथक आज आत्मनिर्भर स्त्री एक स्वतन्त्र पहचान बना चुकी है, फिर भी घर-परिवार व समाज में वह दोयम दर्जे की ही नागरिक है। नारीवादियों को अभी एक लम्बी लड़ाई लड़ने की आवश्यकता है तभी स्त्री अपने संवैधानिक, सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों का उपयोग कर सकेगी। भारतीय नारी मुक्ति आन्दोलन और समकालीन कविता का स्त्री विमर्श कथित यूरोपीय नारीवादी आंदोलन की भांति स्त्री पुरूष को अलग-अलग वर्गों मे बाँटकर वर्ग शत्रु के रूप में चिन्हित नहीं करता। यह स्त्री पुरूष के सम व सह अस्तित्व पर विश्वास करता है।[4]
आज भी भारतीय समाज में थोड़ा बहुत फर्क के साथ कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है। यहां सामन्तवाद, पूंजीवाद, समाजवाद सभी कुछ नमूने के तौर पर देखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में आम भारतीय स्त्री को अपनी अस्मिता बचाने के लिए दोहरे-तिहरे मोर्चे पर संघर्ष करना पड़ रहा है। सोवियत रूस के पराभव के बाद चंद उग्र नारीवादी लेखकों ने समाजवादी व्यवस्था पर आक्षेप लगाते हुए उस काल की स्त्री समस्याओं की विफलताओं को बढ़ा-चढ़ा कर चिन्हित करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में मैं अधिक विस्तार में न जाकर इतना ही कहना चाहती हूँ कि किसी भी समाज में परिवर्तन अर्थात् क्रांति के बाद मात्र चंद दिनों में लोगों का पुराना सोच (संस्कार) नहीं बदला जा सकता। इसके लिए सतत् प्रयास और समय अपेक्षित है। अन्त में मैं एक बार फिर कहना चाहूंगी कि वर्तमान वैश्विक बाजारवादी व्यवस्था (संस्कृति) में बुनियादी बदलाव स्त्री स्वतंत्रता के लिए एक अनिवार्य शर्त है। भारत में पुरूष आबादी का 70 प्रतिशत शोषित है और स्त्री दोहरे-शोषण दोहन एवं उत्पीड़न का शिकार है। इसलिए पहला प्रयास तो यही करना होगा कि ऐसी व्यवस्था बनाई जाए जहां आर्थिक विषमता की इतनी गहरी खाइयां न हों। आर्थिक-निर्भरता के बाद हम लिंग-भेद के आधार पर कोई वरीयता न देने की बात कही गई है किन्तु व्यवहार में यह केवल शब्दों का खेल ही प्रमाणित हुआ है। इसलिए स्त्री-पुरुष दोनाें को मिलकर इसे बदलने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि सही अर्थों में स्त्री-पुरुष दोनों की स्वतन्त्रता का आधार परस्पर सहअस्तित्व पर निर्भर है। हम स्त्रियां इसी स्वतन्त्रता का स्वप् देख रही हैं

विचार-विमर्श

समकालीनता' समय सापेक्ष शब्द है। इस समय जो समकालीन है, वह कुछ अंतराल के बाद 'भूत' हो जायेगा। अब सवाल यह उठता है कि समकालीन हिंदी कविता का समय कब से मानें? आज के समय को सामाजिक क्षेत्र में भूमंडलीकरण, तो आर्थिक क्षेत्र में नवउदारीकरण के नाम से पुकारा जाता है। बीसवीं सदी का नौंवा दशक भारत समेत संपूर्ण विश्व में बदलाव का समय था। सोवियत संघ के पतन के बाद दुनिया दो ध्रुवीय नहीं रह गई। अमेरिकी नेतृत्व में भूमंडलीकरण अब एक घोड़े की रेस बन गया। 1991 में भुगतान संकट के कारण भारत में आर्थिक सुधारों का सूत्रपात हुआ। इसे नवउदारवादी दौर कहा गया। इस नवउदारवादी दौर में यहाँ कई दूरगामी परिवर्तन हुए। समाज और जीवन में बाजार और तकनीक का अभूतपूर्व हस्तक्षेप हुआ। इस हस्तक्षेप के कारण समाज के घोषित मूल्य ध्वस्त हो गए। हिंदी कविता इस बदलाव को बहुत संवेदनशीलता से अभिव्यक्त करती है। अतः मोटे तौर पर समकालीन हिंदी कविता का समय बीसवीं सदी के नौवे दशक से माना जाता है। इस समय पहचान आधारित अस्मिताएँ स्त्री, दलित , आदिवासी भी मुखर होती हैं।

स्वाधीनता मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा है। स्त्री की स्वाधीनता का एक क्षेत्र साहित्य भी है। उसमें वह आत्माभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी अस्मिता की पहचान करती है और स्वतंत्रता की व्यंजना भी करती है। स्त्री-लेखन आज की कविता का एक मुख्य स्वर है। इस कविता में स्त्री होने की विडंबना के बीचो-बीच स्वाभिमान और स्वाधीनता की महता को समझने और अर्जित करने का संघर्षपूर्ण स्वप्न भी मौजूद है। स्त्री-लेखन अपनी मूल स्थापना और अंतिम लक्ष्य में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिनाख्त कर साहित्य और समाजशास्त्र दोनों जगह स्थान बनाता है। यह "पारंपरिक 'माइंड सेट' से लड़ने की कोशिश में परंपरा और माइंड सेट दोनों की ताकत को एक ठोस सामाजिक-मानसिक सच्चाई और चुनौती के रूप में सतह पर लाता है।"[1]

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री-लेखन का स्वर काफी मजबूती से उभरा है। स्त्री-रचनाकारों ने अपनी पीड़ा, अनुभव और आकांक्षा को बखुबी उकेरा है। स्त्री लेखन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए महादेवी वर्मा कहती हैं कि "पुरुष के लिए नारी अनुमान है,परन्तु नारी के लिए अनुभव| अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सकें|"2 समकालीन कविता में एक तरफ स्त्रियाँ अपने लेखन से अपने को अभिव्यक्त कर रही थीं, वहीं दूसरी ओर पुरुष रचनाकार भी स्त्री-

जीवन को काफी संवेदनशीलता से अपनी कविताओं में चित्रित कर रहे हैं।

आज की कविता स्त्री होने की यातना या त्रासदी को स्वर देती है। अनामिका की एक कविता है – "पढ़ा गया है हमको / जैसा पढ़ा जाता है कागज / बच्चों की फटी कॉपियों का / चनाजोरगरम के लिफाफे बनाने के पहले / सुना गया हमको / यों ही उड़ते मन से / जैसे सुने जाते हैं फिल्मी गाने / सस्ते कैसेटों पर / ठसाठस्स ठूसी हुई बस में।"**3** इस शिकायत के साथ एक स्त्री की आकांक्षा यह है कि –"हम भी इंसान हैं / हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर / जैसे पढ़ा होगा बीए के बाद / नौकरी का पहला विज्ञापन।"4 यहाँ पुरुषों के द्वारा हल्के, बल्कि कई बार उपेक्षा के भाव से देखे जाने की मुखालफत के साथ गंभीरतापूर्वक, पूरी संजीदगी से जीवन में शामिल करने का आह्वान है। 'बेजगह' शीर्षक की अपनी दूसरी कविता में अनामिका परंपरागत शिक्षा के उन आरंभिक पाठों का स्मरण करती हैं, जिसके तहत स्त्री को एक कमतर ईकाई के मनोविज्ञान में ढाला जाता रहा है –"याद था हमें एक-एक अक्षर / आरंभिक पाठों का / राम, पाठशाला जा / राधा, खाना पका / राम, आ बताशा खा / राधा, झाड़ू लगा।"**5** लड़के के हिस्से शिक्षा व स्नेह और लड़कियों के लिए काम का आदेश। सिमोन ने इसी संदर्भ में कहा है – 'स्त्री होती नहीं, बना दी जाती है।' महज सेविका और यौन-वस्तु बनने के खिलाफ स्त्रियाँ अब पितृसत्ता के मर्दवादी व्यवहारों का उद्‌घाटन करते हुए तीखे प्रश्न पूछती हैं – 'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए? मात्र एक तकिया / थके-

माँदे आओ और जिस पर सिर टिका दो / एक खूँटी, जिस पर ऊब, उदासी और थकान से भरी कमीज टांग दो। एक चादर जिसे जब चाहे, जहाँ चाहे, बिछा दिया जाए?"**6** कहने का आशय यह है कि परंपरागत रूप से स्त्री पुरुष के लिए तरह-तरह की वस्तुएँ बनती रही है, लेकिन अब वह अपने इस वस्तुकरण का विरोध करती है। यह आधुनिक स्त्री है – अपनी स्थिति को पहचानकर उसमें अपेक्षित परिवर्तन करने की तड़प के कारण। परंपरागत स्त्रीत्व का आदर्श अब सर्वमान्य नहीं रहा। अब इस पर सवाल उठाया जा रहा है, जो बिल्कुल जायज है। इसके प्रति घृणा का भी जन्म होता है। इस दौर की कविताओं ने इस वांछनीय घृणा के लिए भी अपनी शक्ति के अनुसार जीवन में लगातार जगह बनाई है। इनमें से एक तरीका है – पुरुष के स्त्री-विरोधी व्यवहारों का उद्‌घाटन। बाहर से सुसंस्कृत और भीतर से विलास लोलुप पुरुषों के स्त्री-विरोधी चरित्र की पहचान निर्मला पुतुल इस प्रकार करती हैं – 'क्या तुम जानते हो / एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण? / बता सकते हो तुम / एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखे / उसके स्त्रीत्व की परिभाषा? अगर नहीं! तो फिर क्या जानते हो तुम / रसोई और बिस्तर के गणित से परे / एक स्त्री के बारे में…?"**7**

स्त्री को उसके तन के भूगोल के परे जाकर पहचानने वाले पुरुष ऊँगली पर गिनने भर होंगे। लड़कियाँ व्रत करती हैं, ताकि उन्हें ऐसा पति मिले जो उनके मन की गाठों को पढ़ सके, पर मिलते हैं ऐसे पति जो अपनी असफलता और कायरता की खीज़ अपनी पत्नी पर ही निकालते हैं। चंद्रकांत देवताले के शब्दों में – "भयभीत आदमी के / साहसी किस्सों का सबसे बड़ा खज़ाना / उसकी बीबी के पास होता है।"**8**

स्त्री-मुक्ति इस दौर में लिखी जा रही कविताओं का प्रमुख स्वर है। गुलामी की अनुभूतियाँ सघन होकर मुक्ति की जरूरत बनती है और विशिष्ट दृष्टिकोण से संपन्न होकर यह जरूरत मुक्ति के रास्ते तलाशती हैं। कविता स्त्री-मुक्ति की इस प्रक्रिया का प्रवेश द्वार बनती है। निर्मला पुतुल ने लिखा है – "मैं कविता नहीं / शब्दों में खुद को रचती देखती हूँ / अपनी काया से / बाहर खड़ी होकर अपना होना।"**9** यहाँ स्त्री अपना होना शरीर के बाहर देखती है। यह पहचान उसे महज शरीर समझने वाली दृष्टि का विरोध भी है और वास्तविक स्त्रीत्व का आत्मविश्वास भी। बाजार स्त्री को आजाद करने का दावा करता है। कुछ हद तक करता भी है। लेकिन देखने वाली बात यह है कि स्त्री की यह मुक्ति उसके अबाध इस्तेमाल के प्रयोजन से है। सौंदर्य प्रतियोगिताओं से विज्ञापन जगत तक बाजार ने स्त्री शरीर का वस्तुकरण ही

किया है। यह दीगर है कि इसके फलस्वरूप ऐसी स्त्रियाँ भी सामने आई हैं, जो पारंपरिक आवरणों से मुक्त होने के साथ-साथ इस्तेमाल होने से भी इंकार करती हैं। यही स्त्रियाँ इक्कीसवीं सदी की नायिकाएँ होंगी।

अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता और लैंगिक भेदभाव करने वाले समाज में अपने 'स्त्री' होने के हक की माँग इन दिनों मुखर हुई है। शैलचंद्रा के शब्दों में –[5]

"क्या हुआ गर लड़की हूँ / मुझे भी घर में थोड़ी जगह चाहिए / लड़की होने की सजा गर्भ में मुझे मत दो / हूँ जीवित प्राणी इस धरती का / मुझे भी मेरे हिस्से का थोड़ा प्यार दो / प्यार दो अधिकार दो / मुझे भी इस धरती में जीने का हक दो / हूँ जननी मैं पुरुष की / फिर क्यों जन्म से पहले ही घोंट दिया जाता है गला मेरा / इक्कीसवीं सदी में भी।"**10**

अपने हिस्से का प्यार और अधिकार माँगती इक्कीसवीं सदी की स्त्री अपने अधिकार-सीमा का अतिक्रमण नहीं करती। वह चाहती है कि मादा भ्रूण की हत्या न हो / परिवार नामक संस्था में वह 'थोड़ा' ही चाहती है। सभी को उसका वाजिब हिस्सा मिल सके, यही है लैंगिक न्याय की आकांक्षी स्त्री की समावेशी हसरत। उसके मन में हर सदस्य के हिस्से के प्यार और अधिकार का सम्मान है। आज की स्त्री पुरुष के शिकंजे से अधिकाधिक मुक्त हो रही है। इसने स्वयं को पुरुष के नजरिये से अनुकूलित करना बंद कर दिया है। अतः उसके जीवन में लज्जा और कौमार्य की रूढ़ि, जो स्त्री स्वभाव कम और पितृसत्तात्मक रिवाज ज्यादा थे, का क्षरण हो रहा है।

आज की कविता में घर स्त्री-जीवन को बेरंग व एकरस बनाने वाला पारंपरिक स्थान भर नहीं रहा। यद्यपि वहाँ स्त्रियाँ हैं, उनकी लंबी प्रतीक्षा भी, लेकिन साथ में हैं – कुछ सपने, चंद मौके। मधु बी. जोशी के शब्दों में –

"माँ की हाँडी में / हमेशा फालतू बिस्तर / कोई आ जाए / माँ के घर में / हमेशा फालतू जगह / कोई आज आए / कोई कौन?[6] / खो गए बच्चे? / कभी न मिल पाया प्रेमी? कोई सपना या कोई मौका"**11** बच्चे तो माँ की प्रतीक्षा में पहले से शामिल रहे हैं। लेकिन प्रेमी या कोई मौका अब जाकर शामिल हुए। यद्यपि कविता में ये जितनी सहजता से शामिल है वैसे जीवन में नहीं।

कविता की निगाह में यदि स्त्री-मुक्ति के वैयक्तिक संदर्भ हैं, तो स्त्री-मुक्ति के सांगठनिक और सांस्थानिक पक्ष भी और उनके अंतर्विरोध भी। सांगठनिक और सांस्थानिक नारी-आंदोलनों के खोखलेपन को उजागर करते हुए निर्मला पुतुल लिखती हैं –

"एक बार फिर / ऊँची नाक वाली अधकटे ब्लाउज पहने महिलाएँ / करेंगी हमारे जुलूस का नेतृत्व / किसी विशाल बैनर के तले / मंच से खड़ी माइक पर वे चीखेंगी / व्यवस्था के विरुद्ध / और हमारी तालियाँ बटोरते / हाथ उठाकर देंगी / साथ होने का भरम।"**12** निर्मला पुतुल मुक्ति के इस संघर्ष में औरत और औरत के अंतर को साफ-साफ देख लेती हैं। समकालीन हिंदी कविता में स्त्री-मुक्ति के स्वप्न भी हैं तथा स्त्री-मुक्ति के अंतर्विरोधों की पहचान भी।

अनामिका अपनी एक कविता 'तुलसी का झोला' में समाज की परंपरागत माइंडसेट पर सवाल उठाती हैं और स्त्री को नये तरीके से देखने की बात कहती हैं – " 'घन-घमंड' वाली चौपाई भी लिखते हुए / याद आई? --- नहीं आई? / घन-घमंड वाली ही थी रात वह भी / जब मैं तुमसे झगड़ी थी / कोई जाने या नहीं जाने, मैं जानती हूँ क्यों तुमने / 'घमंड' की पटरी 'घन' से बैठाई / नैहर बस घर ही नहीं होता / होता है नैहर अगरधत्त अंगड़ाई / एक निश्चित उबासी, एक नन्ही-सी फुर्सत! / तुमने उस इत्ती-सी फुरसत पर / बोल दिया धावा / तो मेरे हे रामबोला, बम भोला - / मैंने तुम्हें डाटा! / डाँटा तो सुन लेते / जैसे सुना करती थी मैं तुम्हारी ---[7] / पर तुमने दिशा ही बदल दी!"13 कविता में तुलसीदास और रत्नावली की कथा के माध्यम से पुरुष मानसिकता पर जबरदस्त हमला किया गया है। पत्नी से डांट और उपेक्षा मिलने के बाद तुलसीदास बैराग की ओर मुड़े। बैराग अर्थात परंपरागत समाज में सांसारिक मुक्ति का राजपथ! क्या यह मुक्ति, स्त्री को संभव है? स्त्रियां तो रोज ही पति से डांट सुनती हैं। वह कहां घर छोड़कर बैरागी हो जाती हैं! पुरुष घर छोड़े तो समाज उसे आदर से देखता है। स्त्री घर छोड़े तो उसे अच्छी नजर से नहीं देखा जाता है। जिस मीरा को हम आज महान भक्त कवयित्री के रूप में आदर देते हैं, उन्हें अपने समय में कितना विरोध और दुख झेलना पड़ा, इतिहास इस बात का गवाह है। समाज की इस दुहरी मानसिकता पर यह कविता सवाल खड़ा करती है तथा यह मांग करती है कि इस परंपरागत दृष्टि से स्त्री को देखना उचित नहीं है। आज की स्त्री अपने लिए एक स्पेस चाहती है। वह उस परंपरागत स्त्री से अलग है, जहां पति की इच्छा ही उसके जीवन को संचालित करती है – "थोड़ी सी फुरसत चाही थी! / फुरसत नमक ही है, चाहिए थोड़ी-सी / तुमने तो सारा समंदर ही फुरसत का / सर पर पटक डाला!"14 परंपरागत समाज में स्त्री को मुक्ति की राह में बाधक समझा

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

जाता था। भक्ति काल में तो स्त्री माया की पर्याय ही थी। माया, जो सत्य के राह पर जाने से रोके । आज की कविता इसका विरोध करती है – " 'आराम' में भी तो एक 'राम' है कि नहीं - / 'आराम' जो तुमको मेरी गोदी में मिलता था? / मेरी गोदी भी अयोध्या थी, थी काशी! तुमने कोशिश तो की होती इस काशी –

करवट की!"15 आज की स्त्री अपने को एक नया आकार देती है और नए ढंग से देखने की मांग करती है – "एक विनय पत्रिका मेरी भी तो है! [8]
/ लिखी गई थी वो समानांतर / लेकिन बाँची नहीं गई अब तलक!"16 आज की स्त्री अपने को संपूर्णता में देखने की मांग करती है। समतामूलक समाज की स्थापना के लिए लैंगिक भेद का पुरजोर विरोध आज की कविता करती है –
"कब तक बंटना, कब तक छँटना – देखिए मुझे अपने अंतिम दशमलव तक / -
फिर कहिए, क्या मैं बहुत भिन्न हूँ आप से?"17 इस प्रकार स्त्री बराबरी का हक पितृसत्तात्मक समाज से मांगती है।

भक्ति काव्य में माया और पापिनी कही जाने वाली और रीतिकाव्य में महज शरीर में विघटित हो गई स्त्री को आधुनिक कविता उपयुक्त मानवीय व्यक्तित्व प्रदान कर भूल सुधार करती है। स्त्री को जीवन की जरूरी और सारवान इकाई मानते हुए मंगलेश डबराल लिखते हैं –

"एक स्त्री के कारण तुम्हें मिल गया एक कोना / तुम्हारा भी हुआ इंतजार / एक स्त्री के कारण तुम्हें दिखा आकाश / और उसमें उड़ता चिड़ियों का संसार / एक स्त्री के कारण तुम बार-बार चकित हुए तुम्हारी देह नहीं गई बेकार / ---
एक स्त्री के कारण एक स्त्री / बची रही तुम्हारे भीतर|"18 एक पुरुष की मनुष्यता उसके भीतर बची हुई स्त्री के कारण है। इसीलिए स्त्रियों का बचाव, उनका सम्मान मनुष्यता का सम्मान है। यत्र नार्यस्तु पूज्यते... का उद्घोष वाले भारतवर्ष में स्त्री पुरुष समानता आज भी एक आकांक्षा ही है। ध्यान से देखें तो लैंगिक असमानता के कारण स्त्रियों का जीवन दुख की कथा रही है। बेटे के जन्म पर जहां हर घर में खुशियां मनाई जाती है, वहीं कई घरों में आज भी बेटी के आने पर मातम का माहौल बन जाता है |

त्याग, समर्पण और सहनशीलता जैसे मूल्यों के वृत्त में ही स्त्री को देखने के आदी और इसमें फिट बैठने वाले स्त्रियों को महान कहने वाले लोगों की कमी आज भी नहीं है। इस ढांचे में अनुकूलित होना स्त्री का चुनाव नहीं, उसकी विवशता है। इसी संदर्भ में सिमोन द बोउआ ने कहा है – 'गुलामी, गुलाम का पेशा नहीं होती।' अपने शरीर पर अपना अधिकार ना रहे – यह भी एक तरह की गुलामी ही है। गुलामी विवाह के बाद ही शुरू नहीं होती, पहले भी जारी रहती है। स्त्री की यौन पवित्रता भी उसके जीवन की तरह स्वयं उसके लिए नहीं है। गुलामी के इस नए चेहरे को उदय प्रकाश इन शब्दों में दिखाते हैं –
"एक औरत नाक से बहता खून पोछती हुई बोलती है / कसम खाती हूं, मेरे अतीत में कहीं नहीं था प्यार / वहाँ था एक पवित्र, शताब्दियों से लंबा, आग जैसा धधकता सन्नाटा / जिसमें सिक रही थी सिर्फ़ आपकी खातिर मेरी देह।"19 प्यार करना स्त्री-[9]
मन की सहज इच्छा है। वह पुरुष से प्यार करना चाहती है और पुरुष भी उसका प्यार पाना चाहता है। लेकिन औसत स्थितियों में स्त्री ही पुरुष की इच्छा का माध्यम बनती है, स्त्री की इच्छा पूरी करने के लिए पुरुष कभी माध्यम नहीं बनता। इसलिए भी सिमोन के शब्दों में वह 'सेकेंड सेक्स' बनती है।

आज अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी के समर्थकों की मान्यता है कि भूमंडलीकरण ने औरतों को पावर वुमेन बना दिया है। एक निजी फार्म में ऊँचे प्रबंधकीय पद पर काम करती हुई औरत भूमंडलीकरण के समर्थकों द्वारा पेश की जानेवाली सर्वाधिक आकर्षक छवि है। लेकिन गौरतलब है कि दुनिया की संपूर्ण श्रम-
शक्ति में लगभग 45 फीसदी औरतों का हिस्सा है और भूमंडलीकरण से निकली यह 'पावर वुमेन' इन करोड़ों औरतों के एक प्रतिशत का भी प्रतिनिधित्व नहीं करती। हाँ, यह सच है कि भूमंडलीकृत समाज में स्त्री ने कुछ पाया है तो कुछ खोया भी है। समकालीन कविता तटस्थ ढंग से इन दोनों की आवाज उठाती है।[10]

परिणाम

आधुनिक काल की कविता में स्त्री का एक स्वरूप बनता हुआ दिखाई देता है । स्त्री को उसके अंग-प्रत्यंग से हटकर संपूर्णता में देखने की कोशिश की जाती है । इसलिए आधुनिक कविता ने स्त्री की मध्यकालीन छवि को भी तोड़ा । स्त्री 'कविता का by product' नहीं है बल्कि उसकी अपनी स्वतंत्र छवि है । मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' , दिनकर की 'उर्वशी' निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं में स्त्री का अस्तित्व दिखाई देता है । स्त्री इन कविताओं में 'मैं' के साथ है । यही 'मैं' या 'सेल्फ' आधुनिक हिंदी कविता में स्त्री की पहचान है । आधुनिक काल की कविता में स्त्री 'केवल श्रद्धा', 'अबला' और 'नीर भरी दुख की बदली' नहीं है, अब वह पितृसत्ता के 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' देती हुई अपनी मंजिल की ओर बढ़ रही है। अब उसे

पुरुषों की कविताओं में से झाँकने की जरूरत नहीं है बल्कि वह अब स्वयं रच रही हैं । अनामिका ने 'कहती हैं औरतें' किताब की भूमिका में लिखा है कि "एक जमाना था जब पुरुष कविताएँ लिखते थे और औरतें उन कविताओं के अनंत छिद्रों से अच्छी बच्ची की तरह झाँकती मंद-मंद मुस्काया करती थीं । उन औरतों के खास लक्षण होते थे – 1.वे सर्वदा सुंदर होती थीं, सर्वांग सुंदर, पर उन्हें डर बना रहता था कि उनसे उनका यौवन और सौंदर्य छिन न जाए, 2. अक्सर वे असमय ही भगवान को प्यारी हो जाती थीं और 3. आजीवन, जीवन के बाद भी उनका इकलौता काम होता था अपने प्रिय में प्रेरणा पम्प करना किंतु अपनी सुध-बुध बिसराए रखना" । स्त्री स्वयं को रच रही हैं और साहित्य में बराबरी का दख़ल दे रही हैं साथ ही सवाल भी कर रही हैं – मैं किसकी औरत हूँ / कौन है मेरा परमेश्वर/ किसके पाँव दबाती हूँ / किसका दिया खाती हूँ / किसकी मार सहती हूँ । ये पंक्तियाँ हमसे इतनी सरल भाषा में वे प्रश्न पूछती हैं जो पहले कभी नहीं पूछे गए । क्या पितृसत्तात्मक समाज के पास इन 'अबोध' सवालों का कोई जवाब है? यदि बात समकालीन हिंदी कविता की कि जाए तो उसमें स्त्री न बिहारी की नायिका है न छायावादियों की एकान्त प्रणयिनी है बल्कि अपनी पूरी साधारणता, कमजोरियों और विशिष्टताओं के साथ विद्यमान है। वह न अब 'अबला' और न ही 'प्रेयसी' है वह अपने अस्तित्व के साथ नज़र आती है । समकालीन कविता के फलक को देखें तो कई कवयित्रियाँ कविता लेखन में सक्रिय रूप से दिखलाई पड़ती हैं । स्त्रियाँ अपनी कविताओं में स्वयं को रच रही हैं और पुंसवादी समाज के द्वारा स्त्रियों का जो मिथ गढ़ा गया था उसे भी तोड़ रही हैं । गगन गिल का कविता संग्रह 'एक दिन लौटेगी लड़की' में पुराने मिथ को तोड़कर उस नई लड़की की तस्वीर है जो न तो मात्र देह है और न देवी बल्कि अपनी पूरी इयत्ता और चेतना के साथ मौजूद है।

समकालीन स्त्री कविता में स्त्री की उपस्थिति देखें तो उसके कई आयाम दिखाई देते हैं । सदियों के दासत्व से मुक्ति की झटपटाहट, मैं भी हूँ का भाव और सामाजिक रूढ़ियों से टकराती हुई स्त्री दिखाई देती है । स्त्री ने जब स्वयं को रचा तो उस मध्यकालीन स्त्री की छवि को तोड़ा जो उसे भोग की वस्तु और श्रृंगार की प्रतिमा के रूप में चित्रित कर रहा था । रीतिकालीन कवियों ने जो नायिकाओं के कई भेद बतलाए और श्रेष्ठ स्त्री के गुणों को निर्धारित किया स्त्री कवयित्रियों ने उस पर भी चोट की । हमारे रीतिकालीन कवियों ने स्त्री यानि नायिका के कई भेद और उभेद बताए । नायिका भेद पर लगभग दो सौ ग्रंथ हमारे आचार्यों ने लिख डाले । मतिराम का 'रसराज' या फिर पद्माकर के ग्रन्थों में नायिका की आयु, गंध , सौंदर्य आदि के हिसाब से कई भेद हैं । एक सम्पूर्ण स्त्री जो अपने अस्तित्व और चेतना के साथ हो वह कहीं नज़र नहीं आती है । अनामिका स्त्री की इस छवि के खिलाफ लिखती हैं कि -आचार्य, हम इनमें कोई नहीं-/कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं-/मुग्धा, प्रगल्भा, विदग्धा या सुरतिगर्विता/परकीया भी नहीं, न स्वकीया ही!/मुग्धाएं जब थीं हम/देनी थी हमको परीक्षाएं/बोर्ड के सिवा भी कई,/संस्थानों में प्रवेश की परीक्षाएं देते हुए/हमें फुर्सत ही नहीं मिली / मध्यकाल में स्त्री एक 'ऑब्जेक्ट' के रूप में चित्रित है जो कविता का 'बाय प्रॉडक्ट' भी है जिसका काम अपनी यौनिकता, सुंदरता से पुरुष यानि नायक को रिझाना है । अनामिका और अन्य कवयित्रियों ने स्त्री की इसी छवि को तोड़ा है । यही नई स्त्री गगन गिल के वहाँ भी है । स्त्री की जो विरहव्याप्त छवि गढ़ी गई है दरअसल वह स्त्री है ही नहीं । स्त्री को कविता में विरहिणी के रूप में ज्यादा चित्रित किया वह राधा से लेकर बिहारी की नायिकाओं तक में देखा जा सकता है । बिहारी की नायिका विरह में इतनी दुबली हो गई है कि साँस छोड़ने में छः सात हाथ पीछे चली जाती है और सांस लेने में आगे आ जाती है – इत आवति चलि जात उत चली छः सातक हाथ/ चढ़ी हिंडोरे सी रहे लगी उसासन हाथ । दरअसल स्त्री की जो ये आरोपित छवि है इसे कवयित्रियों ने चुनौती दी । साथ ही संस्कृति के गौरव के नाम पर जो स्त्री शोषण सदियों से चला आ रहा है उसकी भी पहचान की । शुभा अपनी कविता 'गौरवमय संस्कृति' में स्त्री की इसी छवि पर चोट करती हैं – हमने ही लिखे हैं / स्त्रियों के विरह गीत / खंडिताओं और पतिकाओं के चित्र / कितने मनमोहक !/ ...युद्धों के बीच / पिता और पुत्र के लिए विलाप करती स्त्रियाँ / कैसी नदी बहाती हैं करुण रस की / हमें आदत है इनमें स्नान करने की / हमारी भुजाएँ जब फड़कती हैं / वीर रस के ज्वालामुखी फूटते हैं / और स्त्रियाँ करुण रस की / आलंबन बनती हैं।[11]

हमारे समाज और साहित्य ने स्त्री के लिए कुछ खांचे बनाए जिसके तहत 'आदर्श' स्त्री और 'बिगड़ी' स्त्री जैसे मिथ भी तैयार किए गए । एक स्त्री को कैसा होना चाहिए? कैसे हँसना, बोलना, बैठना, खाना और क्या पहनना चाहिए वह सब कुछ पितृसत्तात्मक समाज ने निर्धारित कर लिए और कोई स्त्री उन नियमों से बाहर आचरण करती है तो उसके लिए बिगड़ी, बदचलन जैसे कई विशेषण भी गढ़ डाले गए । स्त्री हो / कम बोलना /कम काटना बात औरों की / मत उलझना / मत हँसना पेट पकड़ / चुप चुप गुजर जाना / उन शान –मेले से / स्त्री हो / उसी होने को होना ।[10] स्त्री की इस आचरण मूलक भूमिका को बनाने में हमारे महान साहित्य ने बड़ा योगदान दिया । समाज के इन सांचों पर साहित्य ने प्रश्न लगाने के बजाए अपनी मुहर लगाई । एक स्त्री के लिए इन बेड़ियों को तोड़ना और खुद को रचना कभी भी आसान नहीं रहा । स्त्री को कभी 'मर्यादा' (यानि जो मर्द की मर्जी हो) के नाम पर तो कभी इज्जत के नाम पर उसके सपने, उसकी ज़िंदगी, उसकी उड़ान, को कैद

IJMRSETM ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

करने की कोशिश हमेशा से रही है । रंजना जयसवाल इस 'मर्यादा' रूपी जंज़ीर में जकड़ी स्त्री के बहाने कहती हैं- मैं स्त्री हूँ और जब मैं स्त्री हूँ/तो मुझे दिखना भी चाहिए स्त्री की तरह/मसलन मेरे केश लम्बे,/स्तन पुष्ट और कटि क्षीण हो/देह हो तुली इतनी कि इंच कम न छटाँक ज्यादा/बिल्कुल खूबसूरत डस्टबिन की तरह/जिसमें/डाल सकें वे/देह, मन, दिमाग का सारा कचरा और वह/मुस्कुराता रहे-'प्लीज यूज मी'।/मैं स्त्री हूँ और जब मैं स्त्री हूँ/तो मेरे वस्त्र भी ड्रेस कोड के/ हिसाब से होने चाहिए जरा भी कम न महीन/भले ही हो कार्यक्षेत्र कोई / आखिर मर्यादा से जरूरी क्या है / स्त्री के लिए और मर्यादा वस्त्रों में होती है । जिस मर्यादित और कैद स्त्री की छवि हमारे समाज और साहित्य ने गढ़ी उसे स्त्री कवयित्रियों ने तोड़ा । लेकिन समाज को इस नई स्त्री की छवि आज भी पूर्ण रूप से स्वीकार्य नहीं है- गणित पढ़ती है ये लड़की / हिंदी में विवाद करती / अँग्रेजी में लिखती है / मुस्कराती है / जब भी मिलती है /गलत बातों पर / तन कर अड़ती / खुला दिमाग लिए / जिंदगी से निकलती है ये लड़की । यह 'खुले दिमाग वाली लड़की' है जो स्त्री कविता में उन पुरानी रूढ़ियों को धत्ता बताते हुए आ धमकती है साथ ही कविता में स्त्री की बनी बनाई छवि को तोड़ती है । कात्यायनी की 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' कविता भी इस नए बनते समाज में स्त्री संघर्ष की प्रतीक हैं । ये लड़कियाँ 'स्त्री' की कमजोर छवि, अबला की छवि विलाप करती हुई छवि, पुरुष संरक्षण की आकांक्षी छवि को तोड़ रही हैं । समकालीन स्त्री कविता की यह एक बड़ी खूबी है।[11]

समकालीन स्त्री कविता में परंपरागत स्त्री छवि को तोड़ने वाली स्त्री है तो वहीं नई राह खोजने, आत्मनिर्भर और स्वतंत्र स्त्री भी है। लेकिन इसी 'बाइनरी' के बीच जहाँ 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' हैं तो वहीं आदिवासी 'मुर्मू' और 'सुगिया' भी हैं । सुगिया के बहाने जब निर्मला पुतुल इस 'सभ्य' और 'आधुनिक समाज' से प्रश्न करती हैं कि यहाँ हर पाँचवाँ आदमी उससे/ उसकी देह कि भाषा में क्यों बतियाता है? । तो यह समाज मौन हो जाता है । इसलिए कई बार स्त्री की उस स्वतंत्रता पर सोचने के लिए मजबूर हो जाता हूँ जो महानगर की कवयित्रियाँ की कविताओं में दिखाई देती है । सविता सिंह जब यह कहती हैं कि -मैं किसी की औरत नही हूँ,/ मै अपनी औरत हूँ,/ अपना खाती हूँ,/ जब जी चाहता है तब खाती हूँ,/ मैं किसी की मार नहीं सहती / और मेरा परमेश्वर कोई नहीं । तो एक पल के लिए सुकून मिलता है कि स्त्री अब पुरुष सत्ता को चुनौती दे रही है और वह उसके अधीनस्थ नहीं है । लेकिन दूसरे पल सोचता हूँ की क्या सुगिया कभी ऐसा कह पाएगी ? अच्छा लगता है पढ़कर जब सुधा अरोड़ा अपनी कविता 'अकेली औरत' में लिखती हैं कि इक्कीसवी सदी की यह औरत/हांड मास की नहीं रह जाती/ इस्पात में ढल जाती है/ और समाज का सदियों पुराना/शोषण का इतिहास बदल डालती है । लेकिन अगले ही पल 'मुर्मू' और 'सुगिया' की इक्कीसवी सदी के बारे में सोचने लगता हूँ, वह कब इस्पात में ढलकर अपने शोषणकारी इतिहास को बदलेगी?

कुल मिलाकर देखें तो स्त्री को गढ़ने का काम हमारा समाज आरंभ से ही करता है । सिमोन की यह उक्ति कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है' से टकराए बिना सामाजिक जटिलताओं के बीच जूझती स्त्री को समझना थोड़ा मुश्किल है । सिमोन कि यह उक्ति बार-बार सोचने को मजबूर करती है । स्त्री का अपना क्या है? स्त्री ही क्या है ? स्त्री की देह के अतिरिक्त भी, स्त्री का कोई अस्तित्व है ? क्यों आज भी स्त्री एक अदद घर की तलाश में भटक रही है- राम, देख यह तेरा कमरा है !/'और मेरा ?'/'ओ पगली,'/लड़कियां हवा, धूप, मिट्टी होती हैं/उनका कोई घर नहीं होता है । क्यों स्त्री को एक मुकम्मल रूप में समझने की कोशिश नहीं होती है? क्यों स्त्री पिता और पति रूपी दो छोरों के बीच झूलती रहती है? उसकी अपनी जमीन और ठिकाना कहाँ है ? उसे जाना है आज शाम चार बजे रेलगाड़ी से / जाना है पति के घर से इस बार पिता के घर / एक घर से दूसरे घर जाते हैं वही / नहीं होता जिनका अपना कोई घर । क्या विमला की यह यात्रा खत्म होगी?[12]

इस तरह देखें तो कविता में स्त्री की छवि आरंभ से ही दोयम दर्ज़े की रही है । हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों की पड़ताल करने पर यह बात सामने आती है कि कविता में स्त्री की स्थिति आधुनिक काल से पहले चेतना विहीन मात्र एक शरीर के रूप में थी । उन कविताओं से गुजरते हुए लगता है कि सुंदरता को बचाए रखना और पुरुषों को रिझाना ही स्त्री का काम था । स्त्री के लिए युद्ध होते थे 'जेहि घर देखी सुंदर नार तिह घर धरी जाए तलवार' और उन्हें जीतना पौरुष का प्रमाण था । क्योंकि उनके लिए स्त्री मात्र 'सेक्स ऑब्जेक्ट' थी । स्त्री की इस छवि को आधुनिक काल की कविता ने कुछ हद तक तोड़ा ।आधुनिक कविता ने स्त्री को 'सेक्स ऑब्जेक्ट' के रूप में देखने की प्रवृति पर चोट की लेकिन यहाँ भी स्त्री एक 'कमोडिटी' और पितृसत्ता के कैद में नज़र आती है । यानि स्त्री की स्वतंत्र छवि यहाँ भी नहीं है, वह पत्नी है, माता है, दासी है, बहन है यानि की देह है लेकिन एक स्वतंत्र चेतनाशील स्त्री नहीं है । स्वतंत्र, चेतनासम्पन, संघर्षरत और मैं यानि 'सेल्फ' के साथ मौजूद स्त्री हमें समकालीन स्त्री कविता में दिखाई देती है । स्त्री ने जब स्वयं को रचा तो उन श्रृंगार की प्रतिमाओं को भी खंडित किया जो मध्यकाल में खड़ी की गई थी । समकालीन स्त्री कविता ने मध्यकालीन जड़ताओं को तोड़ा, नायिका भेद से लेकर स्त्री के दोयम होने के भाव तक को खंडित किया । अनामिका की एक कविता है 'मरने की फुर्सत' जरा सोचिए इसके बारे में और समझिए कविता में स्त्री और 'स्त्री की कविता' की ताकत को –

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

ईसा मसीह
औरत नहीं थे
वरना मासिक
धर्म ग्यारह बरस की उम्र से
उनको ठिठकाए ही रखता
देवालय के बाहर..... ![13]

कविता, भाषा में औरत होने की हिम्मत भी तो है. क्या भाषा में औरत के आते ही कविता हो जाती है? आदमी के लिए संभव हो लेकिन, औरत को भाषा में आकर कविता होने के लिए अपने अस्तित्व के प्रश्नों, सदियों की अपनी तहज़ीब के साथ और अपने ख़यालों के दायरों, सदियों के अपने डर के ख़िलाफ़ भाषा में आना होता है. सवाल उठाने और बहुत कुछ तोड़ने की इस ध्वनि का अर्थ क्या औरतों का बहुत बोलना है?

हां, बहुत बोलती हैं औरतें/बस उन सपनों को नहीं कह पातीं

जो आंखों में आकर/छल जाते हैं उनकी नींद…[12]

प्रवेश के काव्यांश के इस पहले हिस्से में एक आरोप है और परदे के पीछे की एक पीड़ा, जिसे शब्दातीत बतलाने की कोशिश की गयी है. यह उस मजबूरी का बयान है, जिसे अनामिका ने 'एक गुमसुम गुस्सा/उबल रहा है धीरे-धीरे' कहा है. गुस्से के साथ 'गुमसुम' विशेषण मात्र नहीं है, यह एक बड़ा बोध भी है, जिस पर आगे चर्चा करते हैं. कविता के सारथी जीते-जागते शब्द होते हैं, इन्हीं शब्दों और इनके बीच बुनी हुई अनकहियों का कुल जमा कविता की भाषा है. कविता की इस भाषा के प्रति सजग और ईमानदार रहने की ज़िम्मेदारी स्वयं और सिर्फ़ कवि की ही है.

और जब नहीं बोलती हैं/तब ख़ामोश हो जाती हैं औरतें

ख़ामोश होना भी तो औरत होना ही है

काव्यांश का यह दूसरा हिस्सा महत्वपूर्ण है. प्रवेश जब कह रही हैं कि ख़ामोश होना औरत होना ही है, तब वह औरत से सदियों की अपेक्षा, औरत के सवाल और इमेज को उस विमर्श में लेकर आ रही हैं, जहां से कविता, भाषा में औरत होने का साहस बनती है. प्रभा खेतान के शब्दों में, 'यदि स्त्री ख़ामोश है, मूक है, तब भी बात बनती है क्योंकि कम से कम अपनी अलग आवाज़ उठाने की कोशिश तो कर रही है. हो सकता है अपनी भाषा ईजाद करने की प्रारंभिक स्थिति में हो.' निश्चित तौर पर चित्रकार और लेखक प्रवेश अपनी भाषा और कविता में अपना क्राफ्ट ईजाद करने की शुरूआत में हैं, फिर भी उनकी कविता समकाल की स्त्री कविता के कई तार झनझनाती है.[12]

समकाल की कविता पर एक बड़ा इल्ज़ाम उसका केवल Thinking Aloud होना है. कविता के भाव पक्ष में विचार की घुसपैठ इस तरह गोया कविता किसी इंटैलेक्चुअल क्लब के कमेंट, किसी अख़बारी चर्चा, किसी आम बहस या किसी एकतरफ़ा वक्तव्य के सिवाय कुछ हो ही नहीं. यह Thinking Aloud कविता पाठक को एकदम से आकर्षित करती है. दो पल सोचने के बाद ही सरेंडर कर देती है. इसमें एक नज़रिये से ज़्यादा कुछ नहीं होता. एक प्रश्न, एक सूत्र या एक आकर्षक पैकिंग में लिपटी कविता ठहरने, उतरने और घुलती रहने वाली नहीं होती.

मैनेजर पांडेय मानते हैं, 'जिन छोटी कविताओं में समकालीन जीवन के बारे में केवल रायज़नी होती है, उनका प्रभाव बहुत कम होता है' . मुराद ये कि कवि ख़ुद को गाइड, मेंटर और फ़िलॉसफ़र मानकर अपनी बात थोप देना चाहता है. कविता का कथित चोला उसे यह संरक्षण भी देता है कि आप इत्तेफ़ाक़ न रखें, तो भी तर्क नहीं कर सकते. इस तरह की कविता एक अहंकार भी दर्शाती है, जिसे पांडेय कवियों का 'ग़लत आत्मविश्वास' और 'जनता की समझ में कवियों का अविश्वास' कहते हैं. प्रवेश की एक कविता शुरू होती है, 'आवाज़ के घने जंगल में क़ैद हूं' और कहां पहुंचती है?[16]

अब आवाज़ के बदलने का समय है

सघन जंगल में/राह, दिखेगी ज़रूर

सर्वेश्वर दयाल को भी इस सिलसिले में याद रखना चाहिए कि कविता का काम 'बोलना' है ही नहीं. 'ग़लत आत्मविश्वास' को वहन करने वाली कविता बड़बड़ करने वाली कविता कही जानी चाहिए और ख़ामोशी रचने वाली, रचने वाली कविता. इस सूत्र से हम स्त्री कविता में प्रवेश करें तो देखते हैं कि रायज़नी या उपदेश देने का अहं कम है, तीव्र स्वरों में नहीं है या महत्वपूर्ण नहीं है. यहां कविता पीड़ा, चिंता और बदलाव की उम्मीद की ज़मीन पर सादे लिबास में पैदल चलती हुई नज़र आती है. आना चाहिए भी क्योंकि यह स्त्री कविता है. प्रवेश के यहां प्रश्न, प्रश्नवाचक और विस्मय चिह्न पर रुकती या खुले सिरों पर छूटती कविताएं ठीक संख्या में हैं.[18]

शब्द जिन्हें हासिल था/अंधे की आंख बनना

जिनमें सिफ़त थी/मूक की जुबां बनने की

वो आज लड़खड़ा रहे हैं/उन्मादी भाषा के अस्त्रों से

गाफ़िल पड़े/धार दे पाएंगे अपने अर्थों को..!

स्त्री कविता की भाषा में शब्दों का अर्थवान होना अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि फिर याद रखना चाहिए कि कविता भाषा में अपने स्त्रीत्व की प्रतिष्ठा करना है. यहां सत्ता की भाषा, वर्चस्व की भाषा, हिंसा की या शोषण की भाषा क़तई ख़ारिज की जानी चाहिए. यहां व्यवस्था से टकराने का माद्दा कम होने की बात नहीं की जा रही, बस उस टकराव के औज़ारों के स्त्रियोचित होने पर विचार है. यहां गुस्सा विस्फोटक या दंगाई नहीं हो सकता, सृजनशील ही हो सकता है या फिर गुमसुम ही. इस भाषा के लिए समकाल की स्त्री कविता कितनी विचारशील है?[17]

'बस देह ही' कविता में प्रवेश, पुरुष द्वारा गढ़ी गयी स्त्री की छवि और पहचान का ख़ुलासा करते हुए स्त्री को चेतावनी रूप में सूचना देती हैं कि वह 'देह ही रही' . यहां पुरुष की दृष्टि से स्त्री को देखना एक पहलू है. एक पूरा समाजशास्त्र और मनोविज्ञान इस दृष्टि के पीछे स्पष्ट है. स्त्री कविता में यह एक विषय लगातार बना हुआ है. स्त्री का स्त्री की देह को लेकर पुरुषवादी नज़रिया कविता में लेकर आना समकाल की स्त्री कविता का पंचम स्वर रहा है.[16]

देह नहीं होती है/एक दिन स्त्री

और उलट-पुलट जाती है/सारी दुनिया अचानक!

कात्यायनी की यह चर्चित कविता उस तर्ज़ का कटाक्ष है, जो पाठक को झकझोर कर रख देता है. इंगित को उद्वेलित कर देने या अपराध बोध से भर देने वाली कविताओं को स्त्री कविता में ही नहीं, किसी भी विमर्श उठाने वाली कविता में ज़्यादा तवज्जो मिलती रही है. इस स्वर की भाषा क्या होनी चाहिए? बेटी को संबोधित करती हुई और पुरुष की 'यत्र नारयस्तु भोग्यन्ते' वाली मानसिकता को लक्ष्य करती हुई एक कविता के क्लाइमेक्स में प्रवेश का कथन देखिए :

तो सुन बेटी/इस जंगल में

जीने से बेहतर है/जौहर कर जाना, और

अपनी राख से देना श्राप/कि ये धरा…

बेटियों की भोग्या देह से हीन हो जाए'[15]

श्राप..! यह आक्रोश की भाषा कही जाये तो स्त्री और आक्रोश? प्रतिशोध की भाषा कही जाये तो प्रेम बनाम प्रतिशोध? यह पीड़ा की भाषा नहीं है. यह वास्तव में, स्त्री का पुरुष की भाषा में बयान है. पुरुष विध्वंस की भाषा में कविता का अनुसंधान करता है क्योंकि ध्वंस उसी के रचे हुए हैं. पुरुष की मानसिकता सृजन और विनाश के द्वंद्व से सिरजती है इसलिए उसकी इस भाषा से सनसनी कभी हो, हैरानी पैदा नहीं होती. स्त्री के साथ समकाल की समस्याएं वही हैं, लेकिन उसके मन, प्राण, आत्मा के अवयव संघर्ष, सृजन और संवेदना हैं. हमारे समय के आलोचक संजीव भी कहते हैं कि 'मर्दानी' होना स्त्री का लक्ष्य क्यों? 'मर्द' के सांचे में स्त्री का ढलना समाज और व्यवस्था में 'स्त्रीत्व' स्थापित करने के चिन्तन का स्पष्ट विरोध है.

अब दिलशाद जी प्यार के रिश्ते कैसे परवान चढ़ेंगे

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

इक दूजे को जब हव्वा और आदम धमकी देते हैं…

समकाल की स्त्री कविता को शोर के बीच आवाज़ बनने का बीड़ा उठाना है. उसे बाज़ारवादी रूढ़ियों को नकारने का दायित्व लेना है. प्रभा खेतान के ये शब्द गांठ बांध लेने हैं, 'परंपरा से मिले हुए शब्दों, मुहावरों एवं विचारों की केंचुल को उतार फेंकना स्त्री की पहली शर्त है. यह स्थिति नहीं चलेगी कि या तो वह ख़ामोश रहे या फिर जो कुछ भी लिखे, वह पुरुष के मानदंडों के अनुसार, उसके मुहावरे में.' अब स्त्री को इस परिभाषा के लिए कमर कसनी है कि कविता भाषा में औरत होने की तहज़ीब है.[14]

निष्कर्ष

शमशेर बहादुर सिंह की मशहूर कविता है 'काल से होड़' । अपनी इस कविता में वे कहते हैं 'काल तुझसे होड़ है मेरी – अपराजित तू/तुझ में अपराजित मैं वास करूं' । अपराजित होने का भाव कब पैदा होता है ? स्वाभाविक है ऐसा भाव काल से गुत्थम गुत्था होने, उससे मुठभेड़ करने से ही पैदा होता है। मुक्तिबोध भी कविता को 'आवेग त्वरित/कालयात्री' बताते हैं। कहने का अर्थ यह है कि कविता का रिश्ता अपने काल से होता है। वह तत्काल, समकाल और देश काल से निरपेक्ष नहीं होती। यही कविता और समय के बीच का द्वन्द्वात्मक रिश्ता है जिसमें समय कवि को है बनाता है, गढ़ता है, वहीं कवि भी अपने समय को रचता है। आज हम जिस दौर में हैं यह कैसा दौर है ? आलोचक मैनेजर पाण्डेय की टिप्पणी है 'ऐसा समय है जब मनुष्य को समाज विरोधी बनाया जा रहा है, वही समाज को मनुष्य विरोधी' । समाज के वे हिस्से जो वास्तविक संचालक है और जिन्हें मुख्य धारा में होना चाहिए आज हाशिए पर हैं। स्त्री समाज उनमें प्रमुख है। जहां तक काव्य सृजन की बात है, मानव समाज की पीड़ा और बराबरी के समाज की उत्कट आकांक्षा हमेशा से स्त्री कविता का आधार रहा है।[13]

हमारे यहां लोकगीतों की समृद्ध परम्परा रही है। स्त्रियों ने अपना दुख-दर्द, हंसी-खुशी, राग-विराग और भावों को लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त किया है। इसमें स्त्री की दशा व दुर्दशा का ही बयान ही नहीं है वरन इनमें सामंती और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति उनका क्षोभ भी व्यक्त हुआ है। यह सचेतनता से अधिक स्वतःस्फूर्त रहा है। लेकिन जैसे जैसे लोकतांत्रिक व समाजवादी आंदोलन तेज हुए, लैंगिक समानता की आवाज भी मुखर हुई है। दुनिया में स्त्री स्वतंत्रता और स्त्री मुक्ति का विमर्श सामने आया। एक तरफ जहां इसे अस्मिता विमर्श या स्त्रीवादी विमर्श के रूप में देखा गया, वहीं इस विचार ने भी आकार ग्रहण किया कि पीड़ित व शोषित समाज की मुक्ति में ही स्त्री मुक्ति संभव है। इस तरह नारीवादी और उसके बरक्स जनवादी – दोनों स्वर मुखर हुए। ये आपस में इस तरह घुले 'मिले हैं कि इन्हें यांत्रिक तरीके से अलगाया नहीं जा सकता है। यह स्त्री कवियों द्वारा लिखी जा रही समकालीन कविता का आधार बना है। उल्लेखनीय है कि स्त्री और उसका जीवन स्वयं कविता का विषय बना है।[12]

देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था है। स्त्री और पुरुष को कानूनन समानता है। भारत का संविधान स्त्री और पुरुष में भेदभाव नहीं करता। इसके बावजूद क्या यह जमीनी हकीकत है ? क्या स्त्री समाज को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समानता प्राप्त है ? वास्तविकता तो यह है कि समाज, साहित्य, कला से लेकर राजनीति तक वह पुरुषों और उनके द्वारा निर्मित संरचनाओं को अभिव्यक्त करने का उपादान मात्र है। स्त्री की प्रतिभा और उसका सौंदर्य भी पुरुषों की आकांक्षाओं को पूरा करने का साधन है। कवि रघुवीर सहाय के शब्दों में कहूं 'स्त्री की देह उसका देश है' । अर्थात वह समाज, देश सभी से विस्थापित है और अपनी देह तक सीमित है। जिस राष्ट्र की कल्पना में उसे जीना और रहना पड़ता है, वह अपने चरित्र और व्यवहार में मर्दाना है। विडम्बना यह है कि यह मर्दाना राष्ट्रवाद स्त्री देह पर कब्जा करने तथा जीते जाने वाले शरीर के रूप में देखता है। उसके लिए वह यौन क्रीड़ा की वस्तु है, युद्ध का मैदान है। यह हमारी राजनीतिक व्यवस्था का दोहरापन है जिसमें एक तरफ स्त्रियों को लेकर बड़ी 'आदर्शवादी' बातें की जाती हैं, 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का शोर मचाया जाता है, वहीं बलात्कारियों का विजय रथ स्त्रियों की स्वतंत्रता से लेकर उनकी देह तक को रौंदता गुजर रहा है। वह आमतौर पर मादा मवेशी की तरह ही देखी और समझी जाती हैं। इसी आधार पर देह पर अधिकार का प्रश्न उभरा और देह मुक्ति को स्त्री मुक्ति के पर्याय के रूप में देखा गया।[11]

स्त्री समाज आज जिस खास समस्या से पीड़ित है, वह है महिला हिंसा। इसके कई रूप है। थामसन राॅयटर्स फाउण्डेशन ने अपने सर्वे में महिलाओं के लिए मानव तस्करी, यौन शोषण और हिंसा के मामले में भारत को दुनिया का सबसे खतरनाक देश माना है। इस रिपोर्ट पर सवाल खड़े किये गये। लेकिन जो सच्चाई है, उसे झुठलाया नहीें जा सकता है। वर्तमान समय का सबसे दुखद व भयावह पहलू यह है कि इस बर्बरता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष राजनीतिक व सामाजिक समर्थन मिल रहा है। कई मामलों में हमने देखा कि बलात्कारियों और अपराधियों को सत्ताधारियों व राजनेताओं का संरक्षण मिला। पिछले दिनों कठुआ और उन्नाव में जो घटनाएं हुईं, उनमें यह देखने में आया। जम्मू के कठुआ में बात्कारियों के समर्थन में जुलूस निकला जिसमें सत्ताधारी दल के मंत्री भी शामिल थे। उस जुलूस में तिरंगा लहराया गया। उन्नाव में भी इसी प्रकार की कहानी दोहराई गई।[1]

IJMRSETM ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

साफ है कि भले ही संविधान स्त्रियों को बराबरी का अधिकार प्रदान करता हों पर अभी भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था काफी मजबूत है। स्त्री सशक्तिकरण की चर्चा जोरों पर है। पर इसमें सबसे बड़ी बाधा हमारा सामाजिक ढ़ांचा, मर्दाना दृष्टिकोण और पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जिसके नीचे दबने-पिसने के लिए स्त्री समुदाय को बाध्य किया जा रहा है। यह भी देखा जा रहा है कि मौजूदा निजाम के दौर में मनुवादी संस्कृति की वकालत की जा रही और ऐसा विचार रखने वाली शक्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि स्त्रियों की बड़ी जमात घर में बैठने को तैयार नहीं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय जीवन और समाज के विविध क्षेत्रों में उनकी बढ़ती भागीदारी और दावेदारी ने उन्हें अबला की स्थिति से बाहर निकाला है। संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण का विधेयक भले ही पारित न हो पाया हो लेकिन सत्रहवीं लोकसभा में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। अपने अधिकारों के प्रति उनमें सजगता दिख रही है। वे बाहर निकल रही हैं और सामूहिक पहल ले रही हैं। वे बलात्कारियों से लेकर इन्हें संरक्षण देने वाली व्यवस्था से लड़ने-भिड़ने को तैयार हैं। यौन उत्पीड़न और हिंसा की हरेेक घटना के विरोध में वे सड़कों पर उतर रही है। वे समानता व स्वतंत्रता का अधिकार कागजों में नहीं, अपने जीवन में और जमीन पर देखना चाहती हैं। वे बेखौफ आजादी चाहती हैं। निर्भया, आसिफा प्रतिरोध का प्रतीक बनकर उभरी हैं।[2]

यही सामाजिक व्यवस्था का द्वन्द्व है। स्त्री हिंसा की बढ़ती घटनाओं ने लोगों को काफी उद्विग्न और उद्वेलित किया है। अधखिले फूलों और कलियों को रौंदने का जो सिलसिला चल रहा है वह व्यथित कर देने वाला है। निर्भया के बाद ऐसी घटनाओं की तो जैसे बाढ़ आ गई। आसिफा के साथ हुई हिंसा की घटना ने मन-मस्तिष्क को इस कदर संवेदित किया कि स्त्री हिंसा और बलात्कार का प्रश्न आज केंद्र में है। इसकी अभिव्यक्ति कला के विभिन्न रूपों में हुई है, हो रही है। फूलों के कत्ल किये जाने पर संवेदनशील कवियों ने अपने गुस्से का इजहार किया है। इस विषय पर अनेक भाषाओं में कविताएं लिखी गई। ऐसी कविताओं की दो किताब पिछले दिनों आयी। पटना से निकलने वाली पत्रिका 'कथान्तर' ने 'मुझे कविता पर भरोसा है' शीर्षक से कविताओं का संग्रह निकाला। वहीं, नवारुण प्रकाशन की ओर से 'आसिफाओं के नाम' कविताओं की किताब आई । इन दोनों संग्रहों में कवियों के साथ कवयित्रियों की इस विषय पर केन्द्रित कविताएं हैं। चंद्रकला त्रिपाठी, सविता सिंह, शीला रोहेकर, सीमा आजाद, विमल किशोर, मृदुला शुक्ला, चंद्रा सदायत, सुमन केशरी, पार्वती नायर, अर्चना यादव, बंदना भट्ट आदि की कविताएं यहां संकलित है।ं हम यहां स्त्री हिंसा को केन्द्र कर लिखी गयी इन कविताओं तथा समकालीन कविता में व्यक्त स्त्री स्वर की चर्चा करेंगे।

स्त्री हिंसा की घटनाएं आईना है। इसमें भारत की सामाजिक व्यवस्था को देखा जा सकता है। कविताएं दर्पण का काम करती है। इन कविताओं से गुजरते हुए पाठक संवेदित हुए बिना नहीं रह सकता। पार्वती नायर की कविता 'मैं घोड़े को घर भेज दिया था मां!' संवाद शैली में लिखी गई है और आप इसे पढ़ते हुए मर्माहत हुए बिना नहीं रह सकते। कविता एक तरफ उन दरिंदों से परिचित कराती है, उन्हें बेनकाब करती है और बताती है कि यह समाज कैसा बन गया है। यहां खूंखार जानवर और मनुष्य के बीच का भेद मिट गया है। हमारे बीच ऐसे मनुष्य हैं जिनके सिर पर जानवरों की तरह सींग नहीं है, खूनी पंजे नहीं है लेकिन ये खूनी पंजा और सींग वाले जानवरों से भी ज्यादा खतरनाक है:[3]

'मां, वो अजीब से दिखते थे

न जानवर, न इंसान जैसे

उनके पास कलेजा नहीं था मां

लेकिन उनके सींग या पंख भी नहीं थे

उनके पास खूनी पंजे भी नहीं थे

लेकिन उन्होंने मुझे बहुत सताया'

कविता मात्र स्थितियों का वर्णन नहीं करती है, वह सामाजिक व्यवस्था की तह में जाती है। भारत की महान सांस्कृतिक परंपरा की बार-बार दुहाई दी जाती है। उसकी शेखी बघारी जाती है। यहां स्त्री को देवी का स्थान मिला। 'यत्र नारी पूजयन्ते, तत्र रमन्ते देवता' जैसी आदर्शवादी बातें की जाती है लेकिन इस आदर्श के अंदर की सच्चाई क्या ह,ै इसे स्त्री कवियों ने सामने लाने का काम किया। कविता इसका पोस्टमार्टम करती है। कविता इतिहास की उन घटनाओं का संदर्भ देती है जिसमें स्त्री को छला गया। धर्म प्रचारकों की सभा में उसे विवस्त्र किया गया। स्त्री कविता धर्म और जाति की व्यवस्था को स्त्री के शोषण और दमन का कारण मानती है। उस पर चोट करती है। अर्चना यादव कहती हैं[4]

'सुनो, द्रोपदी शस्त्र उठा लो

अब गोपाल नहीं आयेंगे

छोड़ो मेंहदी खड्ड संभालो

खुद ही अपना चीर बचा लो

कल तक केवल अंधा राजा

अब वह गूंगा बहरा भी है

सुनो, द्रोपदी शस्त्र उठा लो

अब, गोपाल ना आयेंगे।' [5]

हम इक्कसीवीं सदी के दूसरे दशक में हैं पर आज भी मध्ययुग के मूल्य कायम हैं। वह दौर था जब स्त्रियों का दर्जा धन दौलत की तरह हुआ करता था। वह भोगने की वस्तु समझी जाती थी। एक राजा जब दूसरे राज्य पर चढ़ाई करता और उस पर विजय प्राप्त करता तो न सिर्फ वह धन दौलत पर कब्जा करता बल्कि औरतों को भी बंदी बनाता था। औरतों पर उसका यह कब्जा उसकी जीत की निशानी होती। आज यौन उत्पीड़न व बलात्कार जैसी घटनाओं से जो तथ्य सामने आया है उससे स्पष्ट है कि स्त्रियां न सिर्फ यौन क्षुधा की पूर्ति के लिए पुरुषों का शिकार बनती है बल्कि इसका एक सामाजिक पहलू भी है। किसी से बदला लेने, उसकी जमीन पर कब्जा करने, एक खास वर्ग विशेष के लोगों को प्रताड़ित करने, उन्हें बेदखल करने जैसे निहित उद्देश्य के लिए भी स्त्रियों को महिला हिंसा का शिकार बनाया जाता है। एक खतरनाक दृष्टि भी देखने में आ रही है। वह है महिला हिंसा को सांप्रदायिक चश्मे से देखा जाना। स्त्री कविता ने ऐसे विषय को अपने दायरे में लिया और सांप्रदायिक नजरिये का विरोध किया। उनकी नजर में 'बलात्कारी सिर्फ बलात्कारी होते हैं' । विमल किशोर अपनी कविता में कहती है: [6]

'एक स्त्री का स्त्रीलिंग होना ही

बलात्कारियों के लिए काफी है

उम्र का बंधन नहीं

कोई मर्यादा नहीं

रिश्तो से कोई वास्ता नहीं

धर्म या जाति की सीमा नहीं

बलात्कारी सिर्फ बलात्कारी होते हैं

हिंदू या मुसलमान नहीं होते हैं

ये मुजरिम/सजा के हकदार

मानवता के शत्रु' [7]

असमानता और हिंसा के जितने रूप हैं, स्त्री समाज को उससे गुजरना पड़ता है, भ्ुाण हत्या से लेकर वृद्धा की हत्या तक। आतंकवाद, साम्प्रदायिकता और जातिवाद को लेकर समाज जब भी हिंसा की चपेट में आता है, स्त्रियां सबसे पहले इसका शिकार बनती हैं। मौजूदा फासिस्ट हिंसा का एक विशेष रूप – माॅब लिंचिंग' या 'भीड़ हत्या' देखने में आया है। देखा जाय तो स्त्रियों के संदर्भ में यह गैंग रेप और हत्या है। इस यथार्थ को नकार कर समकालीन स्त्री काव्य चेतना का निर्माण नहीं हो सकता। यह चेतना आज स्त्री संवेदना, अनुभूति, स्त्री जीवन की दशा-दिशा और देह के यथार्थ से आगे निकल चुकी हैं। कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, शुभा,

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

शोभा सिंह, अनीता भारती, निर्मला पुतुल, सरला माहेश्वरी, सीमा आजाद, वीणा भाटिया, प्रतिभा कटियार, उषा राय, संगसार सीमा, संध्या निवेदिता आदि ऐसी कवयित्रियां हैं जहां इस चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है।

शोभा सिंह का चर्चित कविता संग्रह है 'अर्द्ध विधवा' । उनकी अर्द्ध विधवाएं वे कश्मीरी औरते हैं जिनके पति के जिन्दा होने पर संदेह है। वे मार दिये गये या लापता हैं। इन औरतो की व्यथा ही नहीं, उनका संघर्ष भी इन कविताओं में व्यक्त हुआ है। शोभा सिंह की नजर में एसिड पीड़िता भी है। वे इस क्रूरता को उजागर करती हैं:[8]

'तेजाबी हमला/जलती चीखें

गलती मांस मज्जा

यातना के चरम में

फिर/स्पन्दनहीन -घुप्प अंधेरा….

इस तरह/उसके बहुत से सालों को

निगल गया/तेजाबी हमला'

एक बात जो इन कविताओं में दिखता है, वह है एक जिद। हार न मानने की जिद जैसे स्त्री जिद की पर्याय है। जिन पर तेजाब से हमला किया गया, उनकी जिन्दगी को बदसूरत बनाया गया, वे वापस लौटती हैं 'लौट रहीं वे/अपने सामान्य जीवन में/बहुत कुछ हार कर भी/बहुत कुछ जीतती हुई/तोड़ नहीं पाए नपुंसक कायर/उनका उन्नत मनोबल।' [9]

हालात जैसे हैं, उसे देखते हुए आक्रोश का भाव स्त्री कविता का स्वाभाविक भाव है। उषा राय में समूचे परिवेश को लेकर गुस्सा है। औरतें अतीत से जो भोगती चली आ रही है, उसे लेकर पागलपन की हद तक का गुस्सा है। वे इसे एक रूप देना चाहती है, मूर्त करना चाहती हैं:

ं 'बेचैन हो उठती हूं इससे पहले

कि गलत समझा जाए मुझे

पागलों की तरह ढूंढ रही हूं

अपना गुस्सा जिसे वर्षों पहले

तकिए के नीचे दबा दिया था मैंने' [10]

जैसे आज स्त्रियां किसी से दया व करुणा की उम्मीद नहीं करती, वैसे ही स्त्री कविता में कहीं भी निरीहता का भाव नहीं आता है। सविता सिंह कहती हैं 'इस क्रूरता पर हम रोयेंगे नहीं' । सदियों से स्त्रियों ने जो सहा है, भोगा है, कविता में जो आक्रोश है, वह उसी की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। सबसे बड़ी खूबी कि कविता में यह साहस, हिम्मत और हौसले के रूप में व्यक्त हो रहा है। बल्तकृत होने या अत्याचार का शिकार होने के बाद भी वहां अपमान का भाव नहीं है बल्कि अत्याचारियों-बलात्कारियों के विरुद्ध उठ खड़े होने का भाव है। सविता सिंह की कविता में यह यूं आता है:

'मरने के बाद जागकर शिल्पी ने

अपने बलात्कारियों से कहा –

तुम सबने सिर्फ मेरा शरीर नष्ट किया है/मुझे नहीं

मैं जीवित रहूंगी सदा प्रेम करने वालों की यादों में…..

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

आक्रोश बनकर/लाखों करोड़ों दूसरी लड़कियों के हौसलों में

वैसे भी नहीं बच सकता ज्यादा दिन बलात्कारी

हर जगह रोती कलपती स्त्रियां उठा रही हैं अस्त्र' [11]

स्त्री रचनाकारों की लम्बी सूची बनायी जा सकती है परन्तु यहां महिला हिंसा के रूपों के साथ स्त्री कविता में प्रतिरोध के स्वर और जनवादी प्रवृति की पड़ताल मुख्य उद्देश्य है। यहां जिनकी चर्चा है, वे कवयित्रियां नारीवादी विमर्श से आगे जाती हैं। वे अपने दायरे को तोड़ती हैं। कुछ साहित्यिक चिन्तकों की अवधारण है कि कविता तात्कालिक होकर अपने प्रभाव को सीमित कर देती है। लेकिन इतिहास में अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं जो समाज में बड़े मोड़ पैदा करते हैं। रचनाकारों से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने समय में हस्तक्षेप करे। आज के समय के बारे में कहा भी जा रहा है कि यह स्त्री विरोधी काल है। इसे नकार कर स्त्री कविता नहीं रची जा सकती।[12]

कात्यायनी अपनी जनपक्षीय कविताओं के लिए जानी जाती हैं। उनके कोठार में ऐसी ढेर सारी कविताएं हैं जिनमें स्त्री हिंसा के विविध रूप देखने को मिलता है। उनकी कविता गहरी पीड़ा और आक्रोश से उपजती है और पाठक की संवेदना को सघन करती हैं। वे उन घटनाओं को समेटती हैं जो हाल के दिनों में घटी हैं। इन पर समाज की प्रतिक्रिया का न होना, चुपचाप बर्दाश्त कर लिए जाने से इस कदर आहत होती हैं कि कविता ललकार की मुद्रा अख्तियार कर लेती है। क्या समाज सब कुछ मौन देखता रहेगा, कायर बना रहेगा, बर्बरता को स्वीकार करता रहेगा ? उनकी कविता में विद्रोही स्वर सुना जा सकता है – 'यह आर्तनाद नहीं, धधकती हुई पुकार है' । वे कहती हैं:

'जागो मृतात्माओ!

बर्बर कभी भी तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक दे सकते हैं।

कायरो! सावधान!!

भागकर अपने घर पहुँचो और देखो

तुम्हारी बेटी कॉलेज से लौट तो आयी है सलामत,

बीवी घर में महफूज तो है।

बहन के घर फोन लगाकर उसकी भी खोज-खबर ले लो!

कहीं कोई औरत कम तो नहीं हो गयी है

तुम्हारे घर और कुनबे की?'[13]

कात्यायनी की कविताओं में मात्र स्थितियों का वर्णन ही नहीं है बल्कि हालात को बदलने की छटपटाहट भी है। हमारे राजनीतिज्ञों के उस सोच पर भी वे प्रहार करती हैं जो पुरुषवादी है और बलात्कार जैसी घटना को हल्के में लेते हैं और चलताऊ बयान देकर किनारा कर लेते हैं। जैसे सपा के वरिष्ठ नेता मुलायम सिंह ने यह कहा कि 'लड़कों से तो गलती हो ही जाती है' । कात्यायनी का सांकेतिक प्रतिरोध में यकीन नहीं है जैसा आज चलन में है कि किसी भी घटना को लेकर महानगरों व शहरों में मोमबत्तियां जलाकर शोक प्रकट किया जाता है। कात्यायनी मोमबत्ती संस्कृति के विरुद्ध हैं। वे कहती हैं:

'मोमबत्तियाँ जलाने और शोक मनाने से भी कुछ नहीं होगा।[14]

अपने हृदय की गहराइयों में धधकती आग को

ज्वालामुखी के लावे की तरह सड़कों पर बहने देना होगा।

निर्बन्ध कर देना होगा विद्रोह के प्रबल वेगवाही ज्वार को।'

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 12, December 2019

कात्यायनी का इस बात पर जोर है कि स्त्री समाज को अपनी आजादी और अधिकार का घोषणा पत्र जारी करना होगा। स्वाभाविक तौर पर यह अस्मिता विमर्श से आगे की बात है। अनामिका की कविताओं में कात्यायनी की तरह विद्रोही चेतना का दर्शन भिन्न तरीके से होता है। वे स्त्री जीवन की विडम्बनाएं सामने लाती है और उसे अपना विषय बनाती हैं। जैसे वे कहती हैं 'आप लाघ सकते हैं सात समन्दर/बस अपनी परछाई नहीं लांघ सकते' और 'दो लोग जो नफरत करते हैं/एक-दूसरे से/सोने को मजबूर होते हैं साथ-साथ' ।[15] लैंगिक विषमता के विरुद्ध यहां प्रतिरोध का स्वर गहरा और संश्लिष्ट है। अनामिका पुरुषों द्वारा बनाए नियमों को मानने को बाध्य नहीं। वे उसे तोड़ना चाहती हैं। एक नयी दुनिया की संकल्पना उभरती है। वे कहती हैं:

'हलो धरती, कहीं चलो धरती

कोल्हू का बैल बन गोल-गोल घूमें हम कब तक ?

आओ, कहीं आज घूमते हैं तिरछा

एक अगिनबान बनकर/इस ग्रह पथ से दूर……..

उन्होंने कोंच दिया काल कोठरी में

अपनी कलम से मैं लगातार

खोद रही हूं तब से/काल-कोठरी में सुरंग' [16]

यही तो है स्त्री जीवन की सच्चाई। सदियों से वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा बनायी काल कोठरी से बाहर निकलने के लिए सुरंग खोद रही है। यह मुक्ति की सुरंग है। समाज जानता है स्त्रियों का महत्व। वह जानता है कि देश दुनिया चल रही है तो स्त्री की वजह से और सृष्टि का कारण भी स्त्री है। इसीलिए उसे अपने स्थान से बेदखल कर दिया जाय। उसे अधिकारों से वंचित कर दिया जाय। पर आज वह सब पाना चाहती है। स्त्री कविता में पाने का संघर्ष मुखर हो रहा है। प्रतिभा कटियार क्या कहती हैं, इसे अवश्य सुना जाना चाहिए:

ये जो तुम्हारी प्रिय स्त्रियां हैं न

जिन्हें तुमने उन तक, उनकी खुद की चेतना

उनके महसूसने तक

पहुंचने नहीं दिया अब तक

वो सब लाामबंद हो एक रोज

चक्का जाम कर देंगी जिन्दगी का

जब वे मौन होंगी तो धरती मुर्दा शान्ति से भर उठेंगी

और जब वे बोलेंगी तो आतताइयों के परखच्चे उड़ा देंगी

और वो दिन अब दूर नहीं……[17]

स्त्री कविता ने इस भाव-विचार को मजबूती से प्रस्तुत किया है कि स्त्री स्वयं एक इकाई है। उसे खांचों में नहीं बाांटा जा सकता है। स्त्री होना ही अत्याचार का शिकार होना है। औरत चाहे मणिपुरी हो या कश्मीरी, हिन्दू हो या मुस्लिम, आदिवासी हो या सवर्ण या दलित उसके साथ व्यवहार एक सा है। 'अगर तुम औरत हो' में सीमा आजाद कहती भी हैं कि वे कहीं सुरक्षित नहीं है घर हो या बाहर, पुलिस थाना हो या हवेली। वे कहीं भी बलत्कृत हो सकती हैं। महत्वपूर्ण बात है कि स्त्री कविता हिंसक, क्रूर और बर्बर स्थितियों के आगे समर्पण नहीं करती है। वह प्रतिरोध में खड़ी होती है। उसकी समझ है कि औरतों के लिए घरों सें बाहर निकलना, सड़कों पर उतरना और उस निजाम से भिड़ना जरूरी है जिसकी नजर में औरतें केवल शरीर हैं जिन्हें किसी कारण से या अकारण अपना शिकार बनाया जा सकता है।[18]

सार रूप में कहा जा सकता है कि स्त्री कविता के केन्द्र में स्त्री और उसका जीवन अवश्य है और यह स्वाभाविक भी है लेकिन स्त्री काव्य चेतना यहीं तक सीमित नहीं है। वर्तमान वहां मुखर रूप से उपस्थित है। वहीं, अतीत की जड़ों की पड़ताल भी है जिसकी देन वर्तमान है। साथ ही स्त्री कविता में भविष्य की गूंज भी सुनी जा सकती है। भले ही बहुत स्पष्ट न हो, पर वहां भविष्य की संकल्पना भी मौजूद है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उसका प्रतिरोध मात्र प्रतिरोध के लिए नहीं है, वह एक नयी व्यवस्था के लिए है, जिसमें नये पुरुष की परिकल्पना है। जनवादी व समाजवादी व्यवस्था में जिस नये मनुष्य की अवधारणा है, यह पुरुष उसी का प्रतिरूप है। अनामिका अपनी कविता में कहती हैं:

जन्म ले रहा है एक नया पुरुष

मेरे पातालों से……

नया पुरुष जो अतिपुरुष नहीं होगा……

स्वस्थ होंगी धमनियां उसकी

और दृष्टि सम्यक

अतिरेकी पुरुषों की भाषा नहीं बोलेगा।[19]

संदर्भ

[1] स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2011, पृष्ठ 5-6
2 श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010, पृष्ठ 63
3 खुरदुरी हथेलियाँ, अनामिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ 13
4 वहीं, पृष्ठ 13-14
5 वहीं, पृष्ठ 15
6 अपने घर की तलाश में, निर्मला पुतुल, संथाली से अनुवाद : अशोक सिंह, प्रकाशन रमणिका फाउंडेशन, दिल्ली, संस्करण 2004, पृष्ठ 4
7 नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, संथाली से अनुवाद : अशोक सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ 8
8 कवि ने कहा (चुनी हुई कवितायें), चंद्रकांत देवताले, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृष्ठ 97
9 अपने घर की तलाश में, निर्मला पुतुल, संथाली से अनुवाद : अशोक सिंह, प्रकाशन, रमणिकाफाउंडेशन, दिल्ली, संस्करण 2004, पृष्ठ 4-5
10 साक्षात्कार, इक्कीसवीं सदी में स्त्री, शैलेश चंद्रा, अप्रैल 2003, पृष्ठ 48
11 अकेली औरतों के घर, मधु बी. जोशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2005, पृष्ठ 30
12 अपेक्षा : 12, अंबेडकरवादी युवा कविता विशेषांक, जुलाई-सितंबर, 2005, पृष्ठ 57
13 कवि ने कहा, अनामिका , किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली ,सं 2008 ,पृष्ठ 73 -74
14 वहीँ, पृष्ठ 74
15 वहीँ, पृष्ठ 74
16 वहीँ, पृष्ठ 74
17 वहीँ, पृष्ठ 104
18 कवि ने कहा, मंगलेश डबराल , किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली, सं 2008, पृष्ठ 122
19 रात में हारमोनियम, उदय प्रकाश , वाणी प्रकाशन ,दिल्ली , सं 2009 , पृष्ठ 31 – 32